

निज आतमा को आतमा ही जानना है सरलता ।
 निज आतमा की साधना आराधना है सरलता ॥
 वैराग्य-जननी नन्दिनी अभिनन्दिनी है सरलता ।
 है साधकों की संगिनी आनन्द-जननी सरलता ॥४॥
 हे सर्वदर्शी सुमति जिन! आनन्द के रसकन्द हो ।
 हो शक्तियों के संग्रहालय ज्ञान के घनपिण्ड हो ॥
 निर्लोभ हो निर्दोष हो निष्क्रोध हो निष्काम हो ।
 हो परम-पावन पतित-पावन शौचमय सुखधाम हो ॥५॥
 मानता आनन्द सब जग हास में परिहास में ।
 पर आपने निर्मद किया परिहास को परिहास में ॥
 परिहास भी है परिग्रह जग को बताया आपने ।
 हे पद्मप्रभ परमात्मा, पावन किया जग आपने ॥६॥
 पारस सुपारस है वही पारस करे जो लोह को ।
 वह आतमा ही है सुपारस जो स्वयं निर्मोह हो ॥
 रति-राग वर्जित आतमा ही लोक में आराध्य है ।
 निज आतमा का ध्यान ही बस साधना है साध्य है ॥७॥
 रति-अरतिहर श्री चन्द्र जिन तुम ही अपूर्व चन्द्र हो ।
 निश्शेष हो निर्दोष हो निर्विघ्न हो निष्कम्प हो ॥
 निकलंक हो अकलंक हो निष्ठाप हो निष्पाप हो ।
 यदि हैं अमावस अज्ञजन तो पूर्णमासी आप हो ॥८॥
 विरहित विविधविधि सुविधि^१ जिन निज आतमा में लीन हो ।
 हो सर्वगुण सम्पन्न जिन सर्वज्ञ हो स्वाधीन हो ॥
 शिवमग बतावनहार हो शत इन्द्रकरि अभिवन्द्य हो ।
 दुख-शोकहर भ्रम-रोगहर सन्तोषकर सानन्द हो ॥९॥
 आपका गुणगान जो जन करें नित अनुराग से ।
 सब भय भयंकर स्वयं भयकरि भाग जावें भाग से ॥

1. पुष्पदंत

तुम हो स्वयंभू नाथ निर्भय जगत को निर्भय किया।
 हो स्वयं शीतल मलयगिरि से जगत को शीतल किया ॥१०॥
 नरतन विदारन मरन-मारन मलिन भाव विलोक के।
 दुर्गन्धमय मलमूत्रमय नरकादि थल अवलोक के॥
 जिनके न उपजे जुगुप्सा समभाव महल-मसान में।
 वे श्रेय श्रेयस्कर शिरि (श्री) श्रेयांस विचरें ध्यान में ॥११॥
 निज आतमा के भान बिन सुख मानकर रति-राग में।
 सारा जगत नित जल रहा है वासना की आग में॥
 तुम वेद-विरहित वेदविद् जिन वासना से दूर हो।
 वसुपूज्यसुत बस आप ही आनन्द से भरपूर हो ॥१२॥
 बस आतमा ही बस रहा जिनके विमल श्रद्धान में।
 निज आतमा बस एक ही नित रहे जिनके ध्यान में॥
 सब द्रव्य-गुण-पर्याय जिनके नित्य झलकें ज्ञान में।
 वे वेद विरहित विमल जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥१३॥
 तुम हो अनादि अनन्त जिन तुम ही अखण्डानन्त हो।
 तुम वेद विरहित वेदविद् शिवकामिनी के कन्त हो॥
 तुम सन्त हो भगवन्त हो तुम भवजलधि के अन्त हो।
 तुम में अनन्तानन्त गुण तुम ही अनन्तानन्त हो ॥१४॥
 हे धर्म जिन सद्धर्ममय सत् धर्म के आधार हो।
 भवभूमि का परित्याग कर जिन भवजलधि के पार हो॥
 आराधना आराधकर आराधना के सार हो।
 धरमातमा परमातमा तुम धर्म के अवतार हो ॥१५॥
 मोहक महल मणिमाल मण्डित सम्पदा षट्खण्ड की।
 हे शान्ति जिन तृण-सम तजी ली शरण एक अखण्ड की॥
 पायो अखण्डानन्द दर्शन ज्ञान बीरज आपने।
 संसार पार उतारनी दी देशना प्रभु आपने ॥१६॥

मनहर मदन तन वरन सुवरन सुमन सुमन-समान ही।
 धन-धान्य पूरित सम्पदा अगणित कुबेर-समान थी॥
 थीं उर्वशी सी अंगनाएँ संगिनी संसार की।
 श्री कुन्थु जिन तृण-सम तर्जी ली राह भवदधि पार की॥१७॥
 हे चक्रधर! जग जीतकर षट्खण्ड को निज वश किया।
 पर आतमा निज नित्य एक अखण्ड तुम अपना लिया॥
 हे ज्ञानघन अरनाथ जिन! धन-धान्य को ठुकरा दिया।
 विज्ञानघन आनन्दघन निज आतमा को पा लिया॥१८॥
 हे दुपद-त्यागी मल्लिजिन! मन-मल्ल का मर्दन किया।
 एकान्त पीड़ित जगत को अनेकान्त का दर्शन दिया॥
 तुमने बताया जगत को क्रमबद्ध है सब परिणमन।
 हे सर्वदर्शी सर्वज्ञानी! नमन हो शत-शत नमन॥१९॥
 मुनिमनहरण श्री मुनीसुव्रत चतुष्पद परित्याग कर।
 निजपद विहारी हो गये तुम अपद पद परिहार कर॥
 पाया परमपद आपने निज आतमा पहिचान कर।
 निज आतमा को जानकर निज आतमा का ध्यान धर॥२०॥
 निजपद विहारी धरमधारी धरममय धरमातमा।
 निज आतमा को साध पाया परमपद परमातमा॥
 हे यान-त्यागी नमी! तेरी शरण में मम आतमा।
 तूने बताया जगत को सब आतमा परमातमा॥२१॥
 आसन बिना आसन जमा गिरनार पर घनश्याम तन।
 सद्बोध पाया आपने जग को बताया नेमि जिन॥
 स्वाधीन है प्रत्येक जन स्वाधीन है प्रत्येक कन।
 परद्रव्य से है पृथक् पर हर द्रव्य अपने में मगन॥२२॥
 तुम हो अचेलक पार्श्वप्रभु! वस्त्रादि सब परित्याग कर।
 तुम वीतरागी हो गये रागादिभाव निवार कर॥

तुमने बताया जगत को प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्ता न धर्ता कोई है अणु-अणु स्वयं में लीन है॥२३॥
हे पाणिपात्री वीर जिन! जग को बताया आपने।
जग-जाल में अबतक फँसाया पुण्य एवं पाप ने॥
पुण्य एवं पाप से है पार मग सुख-शान्ति का।
यह धर्म का है मरम यह विस्फोट आतम क्रान्ति का॥२४॥

(सोरठा)

पुण्य-पाप से पार, निज आतम का धर्म है।

महिमा अपरम्पार, परम अहिंसा है यही॥

विशेष :- इस जिनेन्द्र-वन्दना में चौबीस परिग्रहों से रहित चौबीस तीर्थकरों की वन्दना की गई है। एक-एक तीर्थकर की स्तुति में क्रमशः एक-एक परिग्रह के अभाव को घटित किया गया है।

दर्शन-पाठ

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम्॥१॥
दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम्॥२॥
वीतराग-मुखं दृष्ट्वा पद्मराग-समप्रभम्।
जन्म-जन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति॥३॥
दर्शनं जिनसूर्यस्य संसारध्वान्तनाशनम्।
बोधनं चित्त-पद्मस्य समस्तार्थ-प्रकाशनम्॥४॥
दर्शनं जिन-चन्द्रस्य सद्धर्माभूत-वर्षणम्।

जन्म-दाहविनाशाय वर्धनं सुख-वारिधेः॥५॥

जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणाश्रयाय।

प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय देवाधिदेवाय नमो जिनाय॥६॥

चिदानन्दैक-रूपाय जिनाय परमात्मने।

परमात्म-प्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः॥७॥

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
 तस्मात्कारुण्य-भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वरः ॥८॥
 नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये ।
 वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥९॥
 जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने ।
 सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१०॥
 जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवेच्चक्रवर्त्यपि ।
 स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिन-धर्मानुवासितः ॥११॥
 जन्म-जन्मकृतं पापं जन्म-कोटिमुपार्जितम् ।
 जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं हन्यते जिन-दर्शनात् ॥१२॥
 अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
 देवः ! त्वदीय-चरणाम्बुजवीक्षणेन ।
 अद्य त्रिलोकतिलकः ! प्रतिभासते मे,
 संसार-वारिधिरयं चुलुकं प्रमाणम् ॥१३॥

देव-स्तुति

(पं. बुधजन कृत)

(हरिगीतिका)

प्रभु पतित पावन, मैं अपावन, चरन आयो सरन जी ।
 यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन-मरन जी ॥
 तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी ।
 या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥
 भव विकट वन में करम वैरी, ज्ञान धन मेरो हस्यो ।
 तब इष्ट भूत्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिस्स्यो ॥
 धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो ।
 अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो ॥
 छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं ।
 वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण जुत, कोटि रविछवि को हरैं ॥